श्रीरामचरितमानस का भारतीय संस्कृति के उत्थान में योगदान

*डॉ. अक्षांश भारद्वाज

श्रीरामचरितमानस एक कालजयी महाकाव्य है जिसमें भारतीय संस्कृति के शाश्वत् मूल्यों की स्थापना की गई है। फलतः वह अपने युग में जिस प्रकार मानवता सामाजिक एवं नैतिक उत्थान में योगदान देता रहा है उसी प्रकार वह वर्तमान युग में भी सहायक है। कारण स्पष्ट है, गोस्वामी तुलसीदास जी के युग में जो परिस्थितियाँ थीं वे ही आज भी विद्यमान हैं।

सामाजिक एवं नैतिक योगदान - गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीरामचरितमानस के माध्यम से सामाजिक और नैतिक उत्थान के लिए समाज और परिवार को भारत के सार्वभौम सांस्कृतिक आदर्शों के अनुरूप ढालने का परामर्श देते हैं। इसीलिए श्रीरामचरितमानस में उन्होंने भाई-भाई के बीच प्रेम और सौहार्द के आदर्श की पराकाष्ठा प्रस्तुत की है। भरत कैकेई के वरदान के माध्यम से अयोध्या के राजा मान लिये गये थे किन्तु उन्होंने वह राज्य स्वीकार नहीं किया एवं उसे चित्रकूट में राम का राज्याभिषेक कराकर राम को वापिस किया। इसी प्रकार लक्ष्मण अपने बड़े भाई राम के लिए स्वयं वनवासी होने को तैयार हो जाते हैं जबकि उन्हें वनवास नहीं दिया गया था। आज परिवारों में भाइयों के बीच संघर्ष होते देखते हैं। एक भाई और उसकी पत्नी दूसरे भाई और उसकी पत्नी के साथ सौहार्द नहीं बैठा पाते। इसी कारण भारतीय समाज के संयुक्त परिवारों में लगातार विघटन की स्थितियाँ दिखाई दे रही हैं। माता-पिता और पुत्रों के बीच भी पीढ़ीगत अंतर पैदा हो गया है जिससे उनमें असामंजस्य एवं संवेदनहीनता बढ़ती जा रही है। इसने अनेक माता-पिताओं को वृद्धाश्रम तक पहुँचा दिया है। माता-पिता की आज्ञा का पालन भी अब महत्वहीन हो गया है। जबकि श्रीरामचरितमानस में श्री राम पिता के आदेश से चौदह वर्षों के वनवास को भी भोगने को सहर्ष तैयार हो जाते हैं। माता-पिता और गुरुजन के प्रति आदर भावना उनमें कूट-कूट कर भरी है। यह पारिवारिक संस्कार या नैतिक मूल्य यद्यपि भारतीय संस्कृति के अनुरूप है किन्तु इसे सहज ही सार्वभौमिक जीवनादर्श के रूप के में स्वीकार किया जा सकता है। जब निम्न समझा जाने वाला केवट दूर से गुरु वशिष्ठ को दण्डवत् प्रणाम करता है तो वशिष्ठ मुनि उसे गले लगा लेते हैं -

"प्रेम पुलकि केवट कहि नामू।कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू ।।

राम सखा रिषि बरबस भेंटा।जनु महि लुठत सनेह समेटा।।1

सर्वप्रथम श्रीरामचरितमानस में वर्ण और जाति संबंधी समस्त भेदभावों को भगवान राम अपने व्यवहार से अस्वीकार करते हैं। तभी तो वे निम्न समझे जाने वाले निषाद से कोई भेदभाव नहीं करते। वे निषाद को अपना सखा बना लेते हैं। उनके इस व्यवहार का प्रभाव निषाद के प्रति भरत और गुरु वशिष्ठ के व्यवहार में भी दिखाई देता है। जैसे ही भरत को ज्ञात होता है कि निषाद भगवान राम का सखा है वे रथ त्याग कर पैदल ही उससे मिलने के लिए प्रेम विभोर होकर चल पड़ते हैं और उसे हृदय से लगा लेते हैं।

राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा ।।[2]

श्रीरामचरितमानस में राम का भेदभाव रहित एवं प्रेमपूरित व्यवहार समतावादी समाज की रचना का आधार है। यह बात शबरी प्रसंग से पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। उस भील जाति की शबरी के घर भगवान राम स्वयं पहुँच जाते हैं। इतना ही नहीं जब शबरी अपनी स्थिति का भान करते हुए कहती है-

अधम ते अधम अधम अति नारी।तिन महँ मैं मति मंद विचारी ।।3

तब राम उसके साथ भेदभावहीन प्रेम व्यवहार करते हुए शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं तथा उसे सभी प्रकार की भक्ति से युक्त- भक्त शिरोमणि घोषित करते हैं।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानस में जाति और वर्ण का कोई भेदभाव स्वीकार नहीं किया गया है। वह सबको समान समझते हुए उन्हें भक्ति का समान अधिकार देती है। गरीब-अमीर का भेदभाव भी श्रीरामचरितमानस में कहीं दिखाई नहीं देता। क्योंकि रामराज्य में गरीबी और विषमता समाप्त हो गई है।

सांस्कृतिक योगदान - श्रीरामचरितमानस में प्रतिष्ठित भारतीय संस्कृति लोकानुकूल है। संस्कृति के सर्वदा दो पक्ष उजागर होते हैं एक वैचारिक अथवा दार्शनिक और दूसरा व्यावहारिक।जो जनसामान्य के दैनंदिन लौकिक जीवन में चरितार्थ होता है। श्रीरामचरितमानस में भारतीय संस्कृति का जैसा समन्वित स्वरूप निबन्धित हुआ है वह परमार्थतः तात्विक मानववाद का परिपोषक है। लेकिन तुलसी ने राम के वन-प्रयाण का पूर्ण सन्दर्भ जिस कौशल से संभाला है] वह हमारी संस्कृति, पारिवारिक संस्कृति के औदार्यपूर्ण स्वरूप का मनोहर दिग्दर्शन है। वात्सल्य, कर्तव्य एवं पारिवारिक सुरक्षा के निमित्त त्याग की भावना राम] सीता] कौसल्या] सुमित्रा तथा लक्ष्मण ये सभी जिस निष्कपट स्नेह एवं ममत्व का परिचय देते हैं, वह सभी भारतीय संस्कृति को एक अप्रतिम महत्व प्रदान करता है।

आदर्श किसी सन्मार्ग पर चल कर ही प्राप्त होते हैं। आदर्शों का निर्माण एक दिन में नहीं हो जाता। जनता किसी बुद्धिमान के पदचिह्नों का बार-बार अनुकरण करती हुई पथ निर्माण करती है। अनेक बार के पद-संचार से एक लकीर सी बन जाती है।भारतीय संस्कृति के आदर्श-पथ भी इसी प्रकार निर्मित हुए हैं। कई शताब्दियों के उलट-फेर के

पश्चात् मानव जाति ने अपनी एक विशेष संस्कृति स्थापित की। क्रमश विकसित होती हुई यह संस्कृति अपने अत्यन्त पुनीत एवं उज्ज्वल रूप में श्रीरामचरितमानस में अभिव्यक्त हुई ।

वनगमन हेतु सीता की अनुमति याचना का प्रसंग नितान्त मधुर, मनोहर है। सास-बहू तथा पति-पुत्र का त्रिकोण यहाँ जिस प्रकार विरचित हुआ है] वह संकोच] संयम] स्नेह] शालीनता का मनोरम सामंजस्य प्रतिफलित करता है- वह भारतीय पारिवारिक संस्कृति का अनुपम निदर्शन है।

"चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी ।।[4]

तदनन्तर राम का उपदेश और सीता का उत्तर-दोनों बिन्दु पारिवारिक जीवन के सामंजस्य के लिए नितान्त उपयोगी हैं। आज हमारे परिवार में ऐसे पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं का प्रायः नितान्त अभाव-सा हो गया है। सीता जिस उद्देश्य से राम के साथ वन-गमन करना चाहती हैं वह आज की तथाकथित शिक्षित पत्नियों का उद्देश्य नहीं रहता हैं।

"अचल होउ अहिबात तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा ।।[5]

कौसल्या का यह आशीर्वाद भारतीय सास की सही परिभाषा है जो आज भी हमारे परिवार के जीवन को विशेषित करता है। सबसे मार्मिक प्रसंग तब उपस्थित हुआ है जब भरत ननिहाल से लौटते हैं। वह समग्र सन्दर्भ भारतीय संस्कृति के एक विशेष प्रकरण को आलोकित करता है। चित्रकूट-मिलन भी विश्वसाहित्य में अनूठा है। स्नेह, ममता, कर्तव्य तथा उत्सर्ग को जो ह्रदयस्पर्शी मन्दाकिनी मानस में यहाँ प्रवाहित हो गयी है, वह किसी भी पारिवारिक विघटन को नियंत्रित करने में समर्थ है। भरत के प्रति राम का विश्वास अविचलायमान है।यही भरत का भरतत्व है।

भारतीय संस्कृति के उत्थान में तुलसीदास जी की महत्वपूर्ण देन है। उनकी रचनाओं में जन्म से लेकर मरणपर्यन्त के संस्कारों का वर्णन है। उत्सव] समारोह] विश्वास तथा रूढ़ियों का उनका चित्रण मानो लोक जीवन का यथार्थ प्रवाह हमारे सामने प्रस्तुत करता है। ये चित्रण जैसे हमारे जीवन के अपने चित्रण हैं। इन चित्रणों की पृष्ठभूमि प्रसंगानुकूल कलात्मक और समृद्धि पूर्ण भी है क्योंकि इनके द्वारा रचित नायक का जीवन अनेक विषमताओं के बीच प्रवाहमान है परन्तु राम और सीता जहाँ भी रहे हैं, वहाँ हमारी संस्कृति और शिष्टाचार के आदर्श के रूप में रहे हैं। इनके भीतर मानवता का सागर उमड़ता दिखाई पड़ता है। ऋषि मुनियों की हड्डियो के ढ़ेरों को देखकर जड़वत् अहल्या के प्रसंग में शबरी की भक्ति भावना, जटायु की वीरता पर] सुग्रीव की विवशता और विभीषण के निराशा पर सर्वत्र राम की मानवता द्रवीभूत हो उठी है। इस प्रकार मानवता भारतीय संस्कृति की मूल है।ग्राम्य एवं नगर दोनों ही प्रकार की संस्कृतियों की समन्वित झाँकियाँ उनके मानस में प्रतिबिम्बित हैं।

साहित्यिक एवं भाषागत योगदान - तुलसी के 'मानस' की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि यही है कि उसमें रामकथा के माध्यम से धरती के सत्य को लोकोत्तीर्ण सत्य से मिला देने का श्लाघ्य प्रयास किया गया है।प्रासंगिकता कवि को अपने परिवेश एवं

युग की धारा में आबद्ध करने की अभिलाषिणी है।श्रीरामचरितमानस भी समय तथा परिवेश से सम्बद्ध भारतीय चेतना से प्रणीत हुई थी। महान काव्य का स्वभाव सार्वभौम एवं सार्वकालिक होता है। इसका अर्थ यह है कि युग के परिवेश के प्रति जागरूक तथा संवेदनशील होने के उपरांत यह मानव के कतिपय जीवन मूल्यों की तरफ उन्मुख होता है जो देश-काल की परिधि का अतिक्रमण कर जाते हैं। मनुष्य अपनी दुर्बलताओं तथा क्षमताओं के साथ चित्रित होकर काव्य को महिमा प्रदान करता है। इन्हीं के अंचल में मानव-मूल्य विकसित, निर्मित होते हैं और ये मूल्य ही अपनी सार्वभौम उपयोगिता के आधार पर किसी रचना को महनीय बनाते हैं। इस दृष्टि से देखने पर 'श्रीरामचरितमानस' महान है सार्वभौम तथा सार्वकालीन आयामों से संयुक्त है और इस अर्थ में वह सदा प्रासंगिक रहेगा। यदि उसमें अलौकिक सत्ता के प्रति अनुराग मिश्रित आस्था आधार बनी है, तो इसी कारण कि मनुष्य निसर्गतः लौकिक सत्यों की संकीर्ण धारा में न बँध कर, किसी लोकोत्तर अस्तित्व में आस्थाशील होता है। तुलसी ने ईश्वर को भू-तल पर उतार कर, उसे निराकार से नराकार रूप में हमारे सुख-दुःखों में भागीदार बना दिया। यह महान आध्यात्मिक आस्थामूलक साहस का प्रकाशन था।

श्रीरामचरितमानस में भाषाओं के बीच संघर्ष का भी निदान प्रस्तुत किया गया है। इस हेतु गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस के प्रत्येक कांड के प्रारम्भ में मंगलाचरण स्तुतियाँ आदि संस्कृत भाषा में लिखी हैं लेकिन सम्पूर्ण ग्रंथ अवधी के रूप में हिन्दी में लिखा है। इस योजना से उन्होंने दो संकेत दिये हैं। प्रथम यह कि भाषाओं के बीच समन्वय और सौहार्द स्थापित किया जाना चाहिए तथा द्वितीय यह कि प्राथमिकता लोकभाषा या जनभाषा को दी जानी चाहिए ।

आस्थागत योगदान - श्रीरामचरितमानस में सर्वोच्च नैतिक आदर्श प्रस्तुत किये गये है वह है निष्काम कर्मयोग। गोस्वामी तुलसीदास ने निष्काम कर्मयोग की पर्याय स्वरूपा रामभक्ति को यह सर्वभौमिक नैतिक आदर्श बताया है। इसके आधार पर भारत के श्रेष्ठतम जीवनादर्श वसुधैव कुटुम्बकम् को दृष्टिगोचर किया जा सकता है। श्रीरामचरितमानस में रामभक्ति को पाँचवें पुरुषार्थ के रूप में मान्यता दी गई है जो चारों मान्य पुरुषार्थ धर्म अर्थ काम मोक्ष से श्रेष्ठ है। इसीलिए भरत चारों पुरुषार्थों को त्याग कर रामभक्ति का वरदान माँगते हैं-

धरम न अरथ न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।।

जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ।।[6]

श्रीरामचरितमानस के सभी रामभक्त केवल निष्काम कर्मयोग की पर्याय रामभक्ति का वरदान माँगते हैं क्योंकि वे सभी निष्काम कर्मयोगी हैं उनमें ये पक्षी वानर मनुष्य आदि सभी शामिल है । वे निष्काम भाव से राम की सेवा करते हैं. किन्तु इस सेवा के बदले कुछ नहीं लेते, केवल भक्ति की याचना करते हैं ।जटायु अनाचारी रावण से सीता की रक्षा हेतु आत्मोत्सर्ग करते हैं किन्तु बदले में कुछ नहीं लेते, केवल भक्ति की याचना करते हैं।

अविरल भगति मागि वर गीध गयउ हरिधाम ।।[7]

कामकभुशुण्डि जी रामकथा सुनाकर सबका अज्ञान हरते हैं किन्तु भगवान राम से भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं मांगते-

बार-बार वर मांगउँ हरिष देत श्रीरंग ।

पद सरोज अनपायनी भगति सदा सत्संग ।।[8]

अंगद] हनुमान]शबरी] निषाद भी केवल रामभक्ति के याचक है। केवट भी राम लक्ष्मण और सीता को गंगा पार उतारने के बाद उतराई में कुछ नहीं लेता। वह भक्ति का वरदान मिलने पर ही प्रस्थान करता है।

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय नहिं कछु केवट लेइ।

विदा कीन्ह करुनायतन भगति विमल वर देइ ।।[9]

इसी क्रम में लक्ष्मण जी भगवान राम के वनवास जाते समय धन धाम पत्नी आदि सभी कुछ त्याग देते हैं; किन्तु भगवान राम और उनकी भक्ति को नहीं छोड़ते।

मन क्रम वचन चरन रति होई। कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई ।।[10]

उपर्युक्त दृष्टांत स्पष्ट करते हैं कि श्रीरामचरितमानस के रामभक्त विषयासक्ति को छोड़कर रामभक्ति को पाना चाहते हैं। वे रामभक्त के श्रेष्ठतम लक्षण-परमार्थ को ही अपना धर्म मानते हैं।

श्रीरामचरितमानस का सामन्वयिक योगदान - समन्वयवाद अनुभूत और कल्पित सत्यों के स्वरूप को मिलाकर, दोनों को स्पर्श करता हुआ, दृष्टिकोण सिद्धान्त या जीवन क्रम है।[11] यह समन्वयवाद सत्य और असत्य के बीच नहीं हो सकता वरन् व्यापक अनन्त और अखंड सत्य के सीमित अनुभवों के बीच हो सकता है।

भारतीय जीवन के क्रम में प्राचीन काल से ही समन्वय स्थापना के प्रयत्न दृष्टिगोचर होते हैं। तुलसीदास जी ने धर्म और उपासना दोनों का समन्वय करते हुए कहा है कि भक्ति में कर्म और उपासना दोनों का समन्वय है।[12]

गोस्वामी तुलसीदास ने समन्वय के अनेक प्रयत्न किये हैं।। जो धर्मप्राण भारतीय जीवन क्रम के अभिन्न अंग बनकर अपने युग के सामाजिक जीवन को प्रभावित करते है।आचार्य शम्भूनाथ पांडेय के शब्दों में- स्वतन्त्र भारत के सम्मुख सामाजिक नवनिर्माण सम्बन्धी जितनी प्रमुख समस्याएं हैं, उनका समाधान तुलसी ने उपलब्ध कराने की

चेष्टा की है यह भी तुलसी की दूरगामी दृष्टि और रामचरितमानस में स्वीकृत मूल्यों की सार्थकता है।[13] भारत के नव निर्माण की जो कल्पना आज हमारे समक्ष है उसे देखते हुए रामचरित आज विशेष प्रासंगिक है।

राम कथा की परम्परा अनेक स्रोतों से तुलसी तक पहुँची थी और उन्होंने उनसे उतना ही लिया था जितना प्रासंगिक था। मध्य काल में नारी स्थिति एकदम दयनीय थी। वह वस्तु के समान पुरूष की भोग्या थी। जिसके प्रति तुलसी सर्वाधिक संवेदनशील थे। अहल्या उद्धार की कथा और शबरी प्रसंग पर्याप्त है। इस प्रकार नवधा भक्ति के अन्तर्गत तुलसी ने जिस जाति का वर्णन किया है उसी से वर्ण व्यवस्था की जड़ता समाप्त होती है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम स्त्री पुरूष, जड़ और चेतन में भी भेद स्वीकार नहीं करते और स्पष्ट घोषणा करते हैं।यह ऐसा प्रसंग है जिससे नारी, शूद्र और जाति विषयक फैली सभी भ्रान्ति पूर्ण धारणाओं का अपने आप निराकरण हो जाता है। [14]

सामाजिक क्षेत्र में भी तुलसीदास जी की समन्वय भावना ही महत्वपूर्ण दिखलायी देती है। इसके अन्तर्गत शास्त्र और लोक का समन्वय, आदर्श और यथार्थ का समन्वय सत्य और प्रेम का समन्वय देख सकते हैं। तुलसीदास जी के भक्ति की स्थापना में लोक जीवन और मोक्ष की भावना का समन्वय है।

दार्शनिक दृष्टि से तुलसीदास जी का मुख्य प्रयत्न द्वैतवादी और अद्वैतवादी दर्शनों के बीच समन्वय स्थापित कर दर्शन को व्यवहारिक बनाना था। अद्वैतवाद का मूल तत्व सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है। इसीलिए ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या] सर्वं खल्विदं ब्रह्म तत्वमसि आदि सूत्र अद्वैतवाद वाले हैं। अद्वैत के अनुसार समस्त द्रव्य वस्तुएँ नाशवान हैं। अन्ततः जो तत्व इस जगत् में रहने वाला है वह ब्रह्म है और यही सत्य है। तात्विक दृष्टि से यह बात सत्य है और पुष्ट करने हेतु गोस्वामी जी ने तत्व चिन्तन के प्रसंगों में इस दृष्टि का प्रतिपादन भी किया है और अद्वैत दृष्टि को अपनाते हुए सभी को ब्रह्ममय ही माना है। उन्होंने तात्विक दृष्टि से अद्वैत को स्वीकार करते हुए व्यावहारिक दृष्टि से द्वैत को भी स्वीकार किया गया है। इन दोनों ही भावनाओं का स्पष्टीकरण उन्होंने अपने ढंग से किया है। विशुद्ध माया रहित ब्रह्म अलग है और ब्रह्म का माया से आवृत रूप अलग है। तुलसीदास जी जीव को ईश्वर का अंश मानते हैं। वह निर्मल और आनन्दमय है, परन्तु माया के वशीभूत होकर सीमित और बन्धमय भी है। दार्शनिक क्षेत्र का द्वैत और अद्वैत का समन्वय ही सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में ज्ञान और भक्ति के समन्वय के रूप में प्रकट हुआ है। ज्ञानी को भी भक्ति की आवश्यकता इसलिए होती है कि वह अखंड और अनन्त ज्ञान को समग्रता से न देखकर एकांगी रूप से देखता है। ज्ञान से युक्त भक्ति का स्वरूप ही मानव जीवन का श्रेष्ठ मार्ग है। [15]

इसी प्रकार शैव और वैष्णव मतों के बीच समन्वय स्थापित करके एक महत्वपूर्ण कार्य किया। स्वयं श्री राम भगवान शंकर के भक्त थे और शंकर राम के शंकर राम के सखा भी है, स्वामी भी है और सेवक भी इस प्रकार शिव और राम में कोई भेदभाव नहीं है तो उनके उपासकों में विरोध भाव की आवश्यकता नहीं है। वास्तविकता में धर्म के क्षेत्र में मानसकार अत्यन्त उदार प्रवृत्ति के थे इसलिए श्रीरामचरितमानस में द्वैत के भेद को मिटाने का सफल प्रयास किया

गया है। तुलसी में स्वयं रामोपासक होने के कारण देवताओं के प्रति श्रद्धाभाव है। तुलसी की समन्वयवादिता ने भारतीयों को संगठित करने का कार्य किया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी केवल कवि ही नहीं बल्कि बहुत बड़े साधक एवं धार्मिक व्यक्ति भी थे। उनके अनुसार धर्म सभी विकारों, रोगों और समस्याओं को दूर करने के लिए रामबाण है। धार्मिक व्यक्ति समस्त बुराईयों से दूर ही रहता है। उनकी रचनाओं की मुख्य विशेषता है कि अध्ययन करने वाला व्यक्ति किसी भी स्थिति में इस भ्रम में नहीं पड़ सकता कि उसका क्या कर्तव्य है। गोस्वामी जी युग निर्माता भी कहे जाते हैं उनकी रचनाएँ युग की सीमा में नहीं बँध पायी हैं।

तुलसीदास जी के अनुसार सभी संस्कृतियों की अंतरात्मा एक है।उसकी धारण करने की शक्ति या धारण करने का रूप भिन्न-भिन्न है। चारों ओर अनादि अनन्त सत् चित् आनन्द प्रवाहमान हैं। उसमें से जिस संस्कृति में जितनी धारण शक्ति है वह उतने ही को ग्रहण कर अपने बाह्य रूप को देदीप्यमान कर रही है। भारतीय संस्कृति के अतिरिक्त प्रायः जितनी भी संस्कृतियाँ है वे इस अनन्त सागर से कुछ ही अंश लेकर अपनी सत्ता को सँभालती हैं परन्तु भारतीय संस्कृति ने इस समस्त विशाल सच्चिदानन्द सागर को ही अपनी व्यापकता से आप्लावित कर लिया है और नाना रूपों में उसकी अभिव्यक्ति की है। गोस्वामी तुलसीदास धर्म की इसी विशाल अन्तरात्मा पर अपनी अमिट आस्था रखते थे। [16]अन्यान्य धर्मों से उन्हें कोई विद्वेष नहीं है क्योंकि वे सभी धर्मों की अंतरात्मा को उसी सच्चिदानन्द सागर का अंश मानते हैं। यही कारण है कि गोस्वामी जी के विशाल धर्म में विभिन्न धर्मों से विरोध ही नहीं है। उनमें हिन्दू धर्म के प्रायः सभी सम्प्रदायों के रूप स्वयं लक्षित होते हैं।

श्रीरामचरितमानस में कई सर्वश्रेष्ठ विशेषताओं का समन्वय हुआ है, जो तुलसीदास जी की लोकप्रियता का कारण है। तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस का निर्माण समस्त उपलब्ध श्रेष्ठ साहित्य के आधार पर किया है। उनमें केवल राम की भक्ति भावना ही नहीं बल्कि जीव के अन्य पक्षों जैसे- आचार, धर्म, संस्कृति, राजनीति आदि का प्रामाणिक एवं व्यावहारिक रूप में समावेश है। पौराणिक विवरण के साथ-साथ मांगलिक, लोकानुभव पर आधारित अलंकृत तत्वों के साथ-साथ महाकाव्य का सा संगठन और सामंजस्य, विवरण के साथ-साथ औचित्य शब्दों के सूक्ष्म सांकेतिक एवं सार्थक प्रयोग और स्मरणीयता, सब मिलाकर उनकी रचना में एक स्थायी प्रभाव देते हैं।[17]

गोस्वामी जी को लोक मानस का ज्ञान है तथा उसको प्रेरित प्रभावित एवं भाव-मान करने की, उन्हें सिद्धि है। साधु-असाधु, सरल, कुटिल, कठोर आदि सभी भावों को व्यक्त करने में वे समर्थ थे। सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव तरंगों को संचालित करने की कुशलता उनके काव्य में है।

अतः हम कह सकते हैं कि श्रीरामचरितमानस गीता की चारित्रिक व्याख्या है क्योंकि उसके रामभक्त निष्काम कर्मयोग को अपने आचरण में उतारकर दिखलाते हैं। श्रीरामचरितमानस की रामभक्ति को सामाजिक जीवन का

सर्वोच्च नैतिक आदर्श मान सकते हैं। ऐसी स्थिति में यह बात प्रमाणित हो जाती है कि श्रीरामचरितमानस का सामन्वयिक उत्थान और भारतीय संस्कृति के उत्थान में अप्रतिम योगदान है।

*सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग, भाषा एवं मानविकी पीठ
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
अजमेर (राज.)

सन्दर्भ-

1 श्रीरामचरितमानस, 2/24/23
2 वही, 2/19/2, 4
3 वही, 4/3/4,2
4 वही, 2/5/7,3
5 वही, 2/68/4
6 वही, 2/204
7 वही, 3/32
8 वही, 7/14
9 वही, 2/102
10 वही, 2/71/4
11 तुलसी का समन्वय सिद्धान्त
12 वही, पृ- 35
13 आ. शम्भूनाथ पांडेय
14 गोस्वामी तुलसीदास का तत्व विवेचन
15 मानस में नारी, पृ- 74
16 आ. अवधेशानंद गिरि
17 तुलसी सौरभ पत्रिका- मानस का महत्व(आलेख)